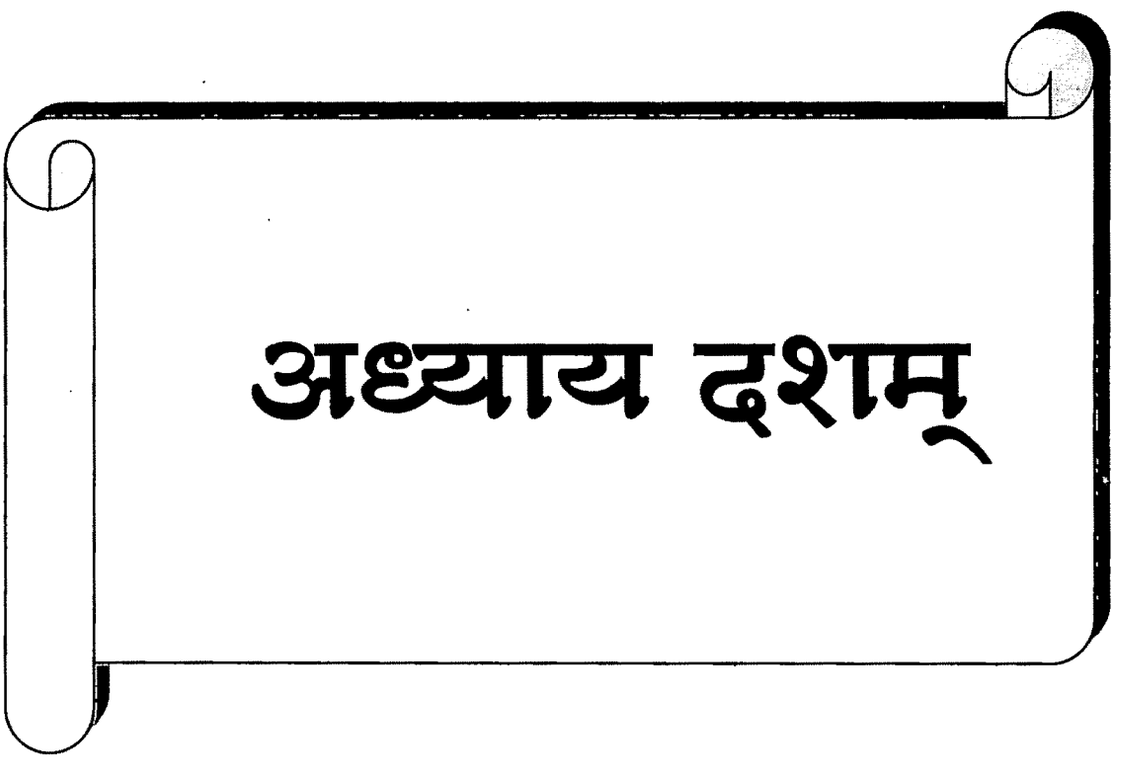

अध्याय दशम्

दशम् अध्याय
उपसंहार

शिवमहापुराण शिव की आराधना एवं उपासना सम्बन्धी पुराण है। इसमें शैव धर्म सम्बन्धी कथा एवं दर्शन दोनों पक्षों का पूर्ण समावेश हुआ है। शैव धर्म, शैवदर्शन एवं शिव के अवतारों का विस्तृत विवेचन ही इस ग्रन्थ की विषयवस्तु है। फिर भी इसमें संजोय गये चित्रित विवरण के कारण पुराण तत्कालीन सभ्यता का दर्पण कहा जा सकता है।

राजपद वंशानुगत तथा श्रेष्ठता के क्रम में था। पर वरिष्ठ अधिकारियों तथा जनप्रतिनिधियों से भी राजा की नियुक्ति की स्वीकृति लेनी पड़ती थी। राज्याभिषेक के बाद युवराज राजा बनता था। राज्याभिषेक राजपुरोहितों एवं मन्त्रीगण करते थे। राजा प्रजा को पुत्रवत स्नेह देता था तथा प्रजा भी उसकी पूजा पितृवत करती थी। राजत्व प्रसंविंदा तथा दैवी सिद्धान्त पर आधारित था। राजा का मुख्य कर्तव्य प्रजा–रक्षण एवं प्रजा–पालन था। ये अपनी ख्याति तथा धार्मिक तुष्टि के लिये बड़े–बड़े यज्ञ यथा– अश्वमेघ यज्ञ, राजसूय यज्ञ आदि करते थे। ये विद्वानों तथा मन्त्रियों का आदर करते थे। विद्वत्ता को प्रश्रय देने के लिये ये विद्वानों को वृत्ति देते थे। राजा का जीवन वैभवपूर्ण एवं ऐश्वर्यशाली होता था। विशिष्ट व्यक्तियों यथा – मन्त्री, विद्वान, राजपुरोहित, सामन्त आदि की सभा होती थी जिसका प्रधान राजा होता था। यहां किसी भी विषय पर निर्णय लिया जाता था। राजा के सेवकों में द्वारपाल, दूत, सारथि, गण, ग्रामाधीश, नगररक्षक, दास, परिचारक, दासियां आदि का उल्लेख आया है। ये राजा के हित में लगे रहना अपना कर्तव्य एवं धर्म समझते थे। कारागार का

जीवन कष्टमय होता था। बन्दी समूहों में रखे जाते थे। इन्हें अपना दैनिक कर्म करने की छूट होती थी। गुप्तचरों का उल्लेख सम्पूर्णरूपेण नहीं प्राप्त होता है। केवल संकेत ही मिलता है। दूत भी रखे जाते थे, दूत दण्डनीय होने पर भी आबध्य होता था। युद्ध में निश्चित सिद्धान्तों का पालन किया जाता था। प्रायः भूमि, सम्पत्ति एवं सौन्दर्य के लिये युद्ध होते थे। युद्ध के सम्बन्ध में लोगों का दृष्टिकोण यह था कि युद्ध–क्षेत्र में मृत्यु होने पर लोक–परलोक दोनों बनता है तथा स्वर्ग की प्राप्ति होती है। आक्रमण के लिये नक्षत्र, मुहूर्त आदि का अध्यान रखा जाता था। सैन्यसंगठन बहुत ही व्यवस्थित होता था। सेना का एक प्रमुख शासक सेनापति होता था पर सर्वोच्च शासक राजा ही होता था। सैन्य–संचालन के अनेक रीतियों में व्यूह की रचना भी लोगों को ज्ञात थी। मुख्यतः प्रकाश तथा कूट युद्धों में ही अनेक प्रकार से युद्ध किये जाते थे। देव तथा आर्य जाति में स्त्रियां भी युद्ध में भाग लेती थीं पर राक्षस या अन्य जाति के लिये ऐसा उल्लेख नहीं मिलता है। सेना के साथ वैद्य, गुप्तचर आदि होते थे। युद्ध भूमि कोई विस्तृत समतल क्षेत्र होता था, यह प्रायः किसी नदी के किनारे होता था। अस्त्र–शस्त्र बड़ी ही उन्नत अवस्था में थे। ऐसे–ऐसे घातक अस्त्रों का उल्लेख मिलता है जो आधुनिक बम एवं हाइड्रोजन बम को भी पीछे छोड़ देता है। युद्ध में अधिकतर धनुष बाण का प्रयोग किया जाता है। बाण बहुत ही शक्तिशाली एवं दाहक होते थे। ये इतने घातक होते थे कि एक बाण से तीनों लोकों (राक्षसों के तीनों लोक) को जलाने का प्रसंग मिलता है। अस्त्र ऐसे होते थे कि लक्ष्य को नष्ट कर स्वामी के पास लौट आते थे। अपनी रक्षा के लिये लोग ढाल और कवच का प्रयोग करते थे।

कला के प्रति लोगों का सहज रूझान था। शिल्प–कला अपनी चरमोन्नति पर थी। कुटीर एवं लघु उद्योगों में शिल्प–कला का विकास होता है।

सुन्दर आभूषण, सौन्दर्य प्रसाधन, रेशमी वस्त्र, कलापूर्ण पात्र आदि शिल्प–कला के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। मूर्ति–कला का अलग से उल्लेख तो नहीं मिलता है पर शिव–प्रतिमा बनाकर पूजा करने का निर्देश है। शिव की अर्धनारीश्वर मूर्ति भी मूर्ति–कला की उत्कृष्ट उदाहरण है। शिवमन्दिर तत्कालीन समाज के स्थापत्य–कला की अभिरुचि की ओर संकेत करते हैं। राजमार्ग चौड़ा होता था तथा इसके दोनों ओर भवन बने होते थे। नगर सुनियोजित एवं व्यवस्थित ढंग से बनाये जाते थे। नगर के चारों तरफ चहार–दीवारी बनी होती थी। आवागमन के लिये कई बड़े–बड़े दरवाजे बने होते थे, जहां पर नगर रक्षक उपस्थित रहता था। इसमें उद्यान, सरोवर, पाठशाला, देवालय, क्रीड़ास्थल आदि बने होते थे। राजा का भवन विशाल एवं सुसज्जित होता था। वह बहुमूल्य पत्थरों का बना होता था। सन्यासी अथवा मुनि लोग कुटी एवं आश्रमों में रहते थे। ये कुटी सुविधानुसार लकड़ी या मिट्टी की बनायी जाती थी। गुफायें बाहर की ओर संकरी तथा अन्दर की ओर विशाल सुन्दर भवनयुक्त होती थी। ये अशोक की गुफाओं से भी अधिक कलात्मक चित्रित की गयी है। संगीत और नृत्य तो मानों तत्कालीन समाज का प्रमुख मनोविनोद ही था। विभिन्न अवसरों पर आयोजित किये जाने वाले उत्सव–संगीत नृत्य से पूर्ण होते थे। संगीत के अनेक कौशल से लोग परिचित थे। सप्तश्वर का अच्छा ज्ञान लोगों को था। गन्धर्व जाति के लोग संगीत के अच्छे ज्ञाता माने जाते थे। विभिन्न प्रकार के ताल एवं लय का भी उल्लेख मिलता है। अनेक प्रकार के वाद्य यन्त्रां का आविष्कार हो चुका था। नृत्य में पुरुष और स्त्री दोनों की अभिरुचि थी। शिव के नृत्य को ताण्डव नृत्य तथा शक्ति के नृत्य को लास नृत्य कहा गया है। लकड़ी, वस्त्र, भवन आदि पर धातु एवं रत्नों से चित्रकारी की जाती थी। स्वान्तःसुखाय के लिये भी चित्र बनाने का उल्लेख मिलता है। कन्यायें तथा स्त्रियां मनोविनोद के लिये चित्र बनाती थीं

जो चित्रकला के प्रति आसक्ति के दृष्टान्त है। शुद्ध तथा देशी संस्कृत भाषा, वेद, वेदांग, धर्मशास्त्र, उपनिषद, धनुर्वेद, इतिहास, श्रुति स्मृति आदि से लोग परिचित थे। दर्शनशास्त्र का विकास हो चुका था। वेदान्त दर्शन एवं सांख्य दर्शन का लोगों को अच्छा ज्ञान था। यन्त्रशास्त्र, मन्त्रशास्त्र, वैद्यकशास्त्र आदि का उल्लेख मिलता है। शिक्षा गुरुकुल में दी जाती थी। उपनयन के बाद बालक की विधिवत शिक्षा प्रारम्भ होती थी। आधुनिक काल की तरह पाठशाला या विद्यालय थे कि नहीं, इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता है। पर ऐसी कोई संस्था अथवा स्थान अवश्य था जहां अध्ययन–अध्यापन का कार्य होता था। गुरु तथा शिष्य सम्बन्ध बड़ा ही मृदु होता था। गुरु शिष्य को पुत्रवत् स्नेह देता था तथा छात्र भी उन्हें पितृतुल्य सम्मान देते थे। शिक्षा समाप्त करने पर गुरु–दक्षिणा देने की परम्परा थी। उच्च कोटि के साहित्य की रचना होने लगी थी। शिव की प्रार्थना सुन्दर स्तोत्रों में करने का उपदेश दिया गया है। साहित्य की प्रत्येक विद्या का विकास हो चुका था। विज्ञान उन्नत अवस्था में था। नक्षत्र, दिन, वार, ऋतु आदि का लोगों को अच्छा ज्ञान था। चिकित्साशास्त्र अपनी चरमोन्नति पर था। मृत व्यक्तियों को जीवित कर देने का प्रसंग आया है। कटे अंगों को जोड़ देने की बात तो समझ में आती है पर मनुष्य के शरीर में पशु (हाथी) का सिर लगा देने की बात कुछ विचित्र सी लगती है।

पौराणिक काल के लोगों का विश्वास था कि सूर्य उदय होने पर जैसे अन्धकार भाग जाता है, उसी प्रकार जहां सनातनधर्म का पालन होता है, वहां दुःख नहीं रह सकता। भगवान् की कृपा से ही लोगों के हृदय में भक्ति का संचार हो सकता है और भक्ति से ही ज्ञान एवं वैराग्य की प्राप्ति हो सकती है। भक्ति के दोनों रूप– सगुण और निर्गुण का प्रचलन था। नवधा भक्ति का ज्ञान लोगों को था। समाज को धार्मिक आचारों द्वारा बांधा दिया गया था। कोई कार्य

करने से पहले उसको धार्मिक परिपेक्ष्य में रखकर उसके परिणामों का निर्णय लिया जाता था। जैसे लोगों का विश्वास था कि होनी होकर रहेगी, इसे टाला नहीं जा सकता है, जो दूसरे का अपमान करता है उसका अपमान स्वयं हो जाता है। माया से ग्रसित होने पर क्रोध आता है और क्रोध में भले–बुरे का ज्ञान नहीं रहना आदि। धर्म का स्वरूप अभी तक बहुत कुछ वैदिक था। यज्ञों आदि कर्मकाण्डों का प्रभाव कम नहीं हुआ था पर वैदिक देवता यथा – रुद्र, सूर्य, इन्द्र आदि के स्थान पर शिव, विष्णु, ब्रह्मा, गणपति आदि की पूजा होने लगी थी। कोई भी कार्य लोक एवं परलोक को ध्यान में रखकर किया जाता था। भारतीय संस्कृति में पौराणिक कथाओं, तीर्थाटन, व्रत, उत्सव और पर्वों की जो प्रणाली परम्परा से चली आ रही है उसमें लोक–संस्कृति का प्रतिपादन हुआ है। लौकिक मान्यता एवं विश्वा अनेकों प्रकार के थे। यहां पर्वत और नदियों को देवी–देवता मानना, गौ को माता से बढ़कर पूज्य मानना, तीर्थाटन, दान, उपदान, कथा–श्रवण करना, विशेष अवसरों पर नदियों में स्नान करना, परोपकार, शरणागत की रक्षा, अतिथिं सत्कार आदि। परलोक की मान्यता थी समाज में लोग दूषित एवं घृणित कर्म करते समय परलोक को ध्यान में रखकर डरते थे। कोई भी अधर्म कार्य या पाप कार्य करते समय परलोक का भय उन्हें उचित मार्ग का निर्देश देता था। वैदिक धर्म प्रचलित थे। पर धीरे–धीरे इनका महत्व कम होता जा रहा था और इनका स्थान पौराणिक धर्म ले रहा था। शिव के विविध रूपों की पूजा होती थी। वैसे इनके तीनों रूप संहारक रुद्र, पालक विष्णु और सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा के स्वरूप की कल्पना हो चुकी थी और पूजा भी होती थी। इन वैदिक एवं पौराणिक धर्मों से अलग एक और धर्म का विकास हो रहा था – इसे श्रवण धर्म कहा जाता था। इसके अनुयायी वैदिक कर्मकाण्डों में विश्वास नहीं करते थे। ये पूजा–पाठ से अधिक कर्म पर ध्यान देते थे। व्रत,

पूजा, तप, यज्ञ, बलि आदि सभी का प्रचलन समाज में था। दान को अत्यधिक महत्व दिया जाता था। वरदान और शाप का अस्तित्व था। शाप से लोग डरते थे एवं इसे अटल समझते थे। वरदान को नित्य मानते थे।

जादू–टोना का उल्लेख नहीं मिलता है। जादू से मिलती–जुलती एक क्रिया का उल्लेख अवश्य आया है जिसे योग अथवा माया कहते थे। भूत–प्रेत पर लोगों का विश्वास था। पशु–पक्षी, मनुष्य की शारीरिक क्रिया तथा प्राकृतिक स्थानों से शकुन तथा अपशकुन ज्ञात किया जाता था। मन्त्र को बहुत महत्व दिया जाता था तथा इसे पवित्र माना जाता था। मन्त्र द्वारा भगवान् शंकर की पूजा करने का निर्देश स्थान–स्थान पर प्राप्त होता था। तन्त्रशास्त्र का विकास हो चुका था पर मन्त्र के समान तन्त्र पवित्र नहीं समझे जाते थे क्योंकि ब्राह्मण एवं उच्च जातियों के लिये मन्त्र को श्रेयस्कर माना गया है जबकि शूद्र एवं इतर जातियों को तांत्रिक पूजन का उपदेश दिया गया है।

कलुषित वृत्ति पर आधारित धर्मविरुद्ध कार्य पाप माना जाता था। पाप तीन प्रकार के होते थे – मानसिक, वाचिक एवं कायिक। यह विश्वास था कि पापी स्वर्ग नहीं पा सकता और उसके पापों का फल उसके सम्पूर्ण कुल को विनष्ट कर देता ळै। पाप मोचन के साधन गंगा स्नान आदि थे। पर पश्चाताप के साथ प्रायश्चित इसका सबसे उत्तम मार्ग था। पर स्त्री गमन, परद्रव्य हरण, गोहत्या, ब्रह्महत्या, मद्यपान आदि प्रमुख पाप माने जाते थे। धर्मपरक कार्य पुण्य माने जाते थे। पुण्य से सुख, स्वर्ग एवं मोक्ष की प्राप्ति होती थी। ऐसा विश्वास था कि पुण्य करने पर अगले जन्म में व्यक्ति राजा बन कर पृथ्वी पर आता है। मन, वचन वं कर्म से शंकर की शरण लेना ही पुण्य कार्य समझा जाता था। वैसे कतिपय कार्य जैसे परोपकार करना, शरणागत की रक्षा करना, पूजा–पाठ, जप–तप, ध्यान, दान आदि पुण्य प्राप्ति के साधन समझे जाते थे। तीर्थाटन एवं

प्रमुख तिथियों पर प्रमुख एवं पवित्र नदियों में स्नान पुण्य प्राप्ति का साधन माना जाता था। काशी संभवतः सबसे प्रमुख धार्मिक स्थल था। वैसे बहुत सारे तीर्थस्थल यथा– प्रयाग, गोकर्ण, रामेश्वर आदि थे जो आज भी है। सरस्वती, सोनभद्र, तमसा, नर्मदा, रेवा, गोदावरी, कृष्णवेनी, तुंगभद्रा, गंगा, कावेरी, सिन्धु, पम्पा कन्या, यमुना आदि बहुत सारी नदियों का उल्लेख आया है जो धार्मिक महत्व की थीं। हिमालय पर्वत एवं उसकी अनेक शृंखलाओं का उल्लेख आया है। यहां उनका मानवीकरण किया गया है। कहीं भी विशेष त्यौहार का उल्लेख नहीं प्राप्त होता है पर उन्नत सामाजिक संरचना को देखते हुए अनुमान लगाय जा सकता है कि त्यौहार मनाये जाते होंगे। विभिन्न अवसरों पर यथा–शिशु जन्म, विवाह, राज्याभिषेक, युद्ध विजय आदि के अवसरों पर बड़े–बड़े उत्सवों का आयोजन किया जाता था। इसमें नृत्य, गीत के साथ कुछ धार्मिक क्रियाएं यथा– दान देना, आदि भी होता था। कुछ तिथियां धार्मिक एवं पवित्र समझी जाती थीं। इन दिनों व्रत, उपवास रखा जाता था एवं तिथि से सम्बन्धित देवता का विधि–विाान से पूजन किया जाता था। ऐसी बहुत सारी तिथियों का उल्लेख यहां प्राप्त होता है पर शैवों के लिये फाल्गुन कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी सबसे उत्तम तिथि मानी जाती थी। शैव पुराण होने के नाते इस पुराण में शिवपूजक मुनियों, राजाओं, राक्षसों आदि को विशेष स्थान दिया गया है। यहां उनकी लम्बी सूची प्राप्त होती है। बहुत–सी स्त्रियों का भी उल्लेख मिलता है। इन्हें देवी कहा गया है।

इन विवरणों से अनुमान होता है कि पौराणिक सभ्यता अत्यन्त विकसित था। इससे उच्चकोटि का सभ्यता उन दिनों अन्य देशों में पाना कठिन था।